IJARASEM

ISSN: 2395-7852

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management

Volume 10, Issue 3, May 2023

INTERNATIONAL
STANDARD
SERIAL
NUMBER
INDIA

Impact Factor: 6.551

+91 9940572462 +91 9940572462 ijarasem@gmail.com www.ijarasem.com

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 3, May 2023 |

हिंदी कथा साहित्य में स्त्री चेतना का विकास

Shalu Pareek

Assistant Professor, S.S.G. Pareek PG Girls College, Jaipur, Rajasthan, India

सार

'स्व' के प्रति सजगता, अपने अधिकार एवं अस्तित्व की चेतना स्त्री-विमर्श की मुख्य शक्ति है जो समकालीन हिन्दी साहित्य में प्रखर - से- प्रखरतर होती गई हैं। युग-युग से होते आए शोषण और दमन के प्रति पनपी स्त्री-चेतना ने ही स्त्री-विमर्श को जन्म दिया। वस्तुतः स्त्री-विमर्श समकालीन विचार चिन्तन है। हिन्दी के आरंभिक उपन्यासों में स्त्री चेतना के बीज पाये जाते हैं। प्रथम गद्य रचना 'देवरानी-जेठानी की कहानी', 'वामा शिक्षक', 'भाग्यवती', 'सुन्दर शिक्षक' और 'परीक्षा गुरु' आदि में स्त्री चेतना ही निहित है। जैसे-जैसे समाज में नारी की स्थिति में बदलाव आया है, वह अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत हुई है। स्त्री अपनी गुलाम मानसिकता वाली छवि, सती-साध्वी या पति-परमेश्वरी को तोड़कर अपना स्वतंत्र वजूद बनाना चाहती है। आधुनिकता और बौद्धिकता के कारण वह अपने निज स्वरूप और अपनी भावनाओं एवं इच्छाओं के प्रति सचेत हुई है। महादेवी वर्मा के अनुसार - ''हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुता चाहिए, न किसी पर प्रभुत्व, केवल अपना वह स्थान वे स्वत्व चाहिये जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नहीं बन सकेगी'

परिचय

समकालीन महिला लेखन नारी के अस्मिता व स्वतंत्र अस्तित्व की खोज का लेखन है। उन्होंने सदियों की चुप्पी को तोड़ा है। वह पुरानी रूढियों, रीति रिवाजों को मानने के लिए विवश नहीं है। अपने निर्णय वह स्वयं लेती है। 'कोहरे' की नायिका कहती है कि ''औरतें जितनी कमजोर दिखती है उतनी ही वह भीतर से ठोस होती है।'' चित्रा मुद्गल के शब्दों में ''नारी चेतना की मुहिम स्वयं स्त्री के लिए अपने अस्तित्व को मानवीय रूप में अनुभव करने और करवाने का आन्दोलन है कि मैं भी मनुष्य हूँ और अन्य मनुष्यों की तरह समाज में सम्मानपूर्वक रहने की अधिकारी हूँ।[1]'' उनका 'आवां' उपन्यास स्त्री चेतना को अभिव्यक्ति देता समय से पड़ताल है। मैत्रेयी पुष्पा की 'फैसला' कहानी स्त्री का वह तेवर और पहचान है जो पुरुष वर्चस्व के आतंक तले कभी अभिव्यक्ति नहीं पा सका, लेकिन अब उभर रहा है। आज का महिला लेखन किसी विशिष्ट चौखट में बंधने को तैयार नहीं।भूमंडलीकरण ने उपभोक्तावाद को बढ़ावा दिया है। ममता कालिया का 'दौड़' इस पूरे विमर्श की प्रस्तुति है। उपभोक्तावादी संस्कृति की विरूपता को व्यक्त करती रचनाओं में नीलम शंकर की 'प्रतिशोध', अल्पना मिश्र की 'पड़ाव' जैसी रचनाएँ समाज को दिशा देने की दृष्टि से उल्लेखनीय है। स्वातंत्र्योत्तर महिला लेखिकाओं ने नैतिक मूल्यों के प्रति जागृत होकर हिन्दी कथा साहित्य को नयी दिशा देने का प्रयत्न किया। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, सूर्यबाला, मालती जोशी, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा आदि लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री की साहसिकता का परिचय देकर उसकी मानसिक पीड़ा को बहुत ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्ति दी है। कृष्णा सोबती ने 'मित्रो मरजानी' के माध्यम से एक स्त्री की साहसिकता व्यक्त की है। [2] उनकी मित्रो एक ऐसी पात्र है जिसने नैतिकता का आडंबर छोड़कर अपनी दैहिक जरुरतों की खुलकर अभिव्यक्ति की है। मृदुला गर्ग का चितकोबरा, नासिरा शर्मा का शाल्मली, प्रभा खेतान का छिन्नमस्ता आदि नारी की विभिन्न समस्याओं को अभिव्यक्त करने वाले उपन्यास हैं। मृदुला गर्ग का 'मैं और मैं' एक महिला लेखिका के जिन्दगी के संघर्ष को चित्रित करने वाला उपन्यास है। पारिवारिक जिम्मेदारियां और लेखन के द्वन्द्व के बीच फंसी नारी की विवशता का चित्रण इसमें है। मैत्रेयी पुष्पा का चर्चित उपन्यास 'इदन्नमम' स्त्री संघर्ष का जीवंत दस्तावेज कहा जाता है। वैश्विक तथा भारतीय परिवेश में स्त्री शोषण की कहानी सुनाने वाला एक और उपन्यास है-'कठगुलाब'।[3] कठगुलाब के सभी पुरुषों द्वारा नारी को पीड़ित एवं प्रताड़ित दिखाया गया है। आधुनिक काल की बदलती हुई परिस्थितियों के कारण स्त्री का भी सर्वांगीण विकास हुआ। वह घर से बाहर आने लगी। पुरुष पर ज्यादा निर्भर रहना उसे पसंद न आया। परिणामतः पति पत्नी में झगड़ा शुरू हो गया। एक दूसरे को सहना मुश्किल हो गया तो तलाक का प्रश्न भी सामने आया। मन्नु भंडारी का उपन्यास 'आपका बंटी' में दाम्पत्य जीवन की समस्याएं हैं। दोनों की अहंवादी प्रकृति के कारण दाम्पत्य जीवन की समस्याएं शुरू होती हैं। आपका बंटी अपने समय से आगे की कहानी कहता है। शकुन के जीवन की सबसे बडी ट्रेजेडी यह है कि वह व्यक्ति और माँ के द्वन्द्व में न व्यक्ति बनकर जी सकी और न माँ

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 6.551| Peer Reviewed & Referred Journal |

| Volume 10, Issue 3, May 2023 |

बनकर यह अकेली शकुन की ट्रेजेडी न होकर भारतीय समाज की सैकड़ों स्त्रियों की दास्तां है।स्त्री विमर्श उस साहित्यिक आंदोलन को कहा जाता है जिसमें स्त्री अस्मिता को केंद्र में रखकर संगठित रूप से स्त्री साहित्य की रचना की गई। हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श अन्य अस्मितामूलक विमर्शों के भांति हीं मुख्य विमर्श रहा है जो की लिंग विमर्श पर आधारित है। स्त्री विमर्श को अंग्रेजी में फेमिनिज्म कहा गया है। शुरुआत में हिंदी में इसके लिए नारीवाद या मातृसत्तातमक शब्द प्रचलन में रहा है।[4]

हिन्दी उपन्यास साहित्य में ‘स्त्री विमर्श’ पिछले तीन-चार दशकों से एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुका है। महिलायें पारम्परिक रूढ़िवादी सोच को चुनौती देती हुई पूरे साहस के साथ खुलकर अपनी बात कह रही है। नासिरा शर्मा का ‘एक और शाल्मली’ जिसमें घर और बाहर अपने अधिकार माँगती आजादी के बाद की उभरती एक अलग किस्म की स्वतंत्रचेता स्त्री है जो पति से संवाद चाहती है, बराबरी का दर्जा चाहती है, प्रेम की माँग करती है जो उसका हक है। शाल्मली एक स्थान पर कहती है ‘‘मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूँ मेरी नजर में नारी मुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच, स्त्री की स्थिति को बदलने में है।’’ नासिरा शर्मा का एक और उपन्यास ‘ठीकरे की मंगनी’ जिसमें बचपन में बिना पैसे के लेन-देन के मंगनी हो जाती है और लड़का बड़ा होने पर शादी करने से मुकर जाता है। [5]इस पर जुझारू औरत टूटती नहीं, वह अपना एक घर बनाती है, एक वजूद हासिल करती है और मर्द के लौटने पर उसे दुबारा कुबूल नहीं करती। यह संघर्षशील नारी बदली हुई स्थितियों में पुराने मूल्यों की पड़ताल करती है। स्वतंत्रता के बाद की लेखिकाओं की रचनाओं में आत्माभिव्यक्ति के साथ-साथ नारी जीवन की विभिन्न स्थितियों का वर्णन मिलता है। ‘कुइयाँ जान’ उपन्यास के केन्द्र में पानी की समस्या है। इस समस्या से रू-ब-रू होती औरतों में सामाजिक सरोकार उभर आते हैं और वे पर्यावरण के मुद्दे पर बात करती हैं।कृष्णा सोबती की नारी स्थूल दृष्टि में देखने पर कामनाओं द्वारा संचालित विशुद्ध देह के स्तर पर जीवन जीती नारी है, लेकिन जरा सी गहराई में उतरते ही वह स्त्री अस्मिता की उँचाईयों को छूने के प्रयास में जिन मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था व्यक्त करती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मित्रो और रत्ती के जरिये बहिष्कृत स्त्री को उन्होंने पहले-पहल हिन्दी कथा साहित्य में स्थान दिया। [6]इसके विपरीत मंदा (इदन्नमम), सारंग (चाक) और कदम बाई (अल्मा कबूतरी) बनी बनाई कसौटियों को तोड़ने या उन पर स्वयं कसने के तनाव भरे द्वन्द्व से मुक्त होकर समाज में अपनी पहचान बनाती है।

स्त्रियों के बहुआयामी जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं को कतरा-दरकतरा निचोड़ता हुआ रेशा-दर-रेशा बुनता हुआ यह कथात्मक साहित्य उनकी जिन्दगी के अंधेरे कोनों में सूर्य किरणों की भाँति घुसकर आर-पार देखने का जोखिम उठा रहा है। शशीप्रभा शास्त्री (‘नावें’, ‘सीढ़ियाँ’), मृदुला गर्ग (‘उसके हिस्से की धूप’), मंजुल भगत (‘अनारो’), कुसुम अंसल (‘उसकी पंचवटी’, ‘अपनी अपनी यात्रा’), उषा प्रियंवदा (‘पचपन खम्भे लाल दीवारें’ , ‘रुकोगी नहीं राधिका’), मन्नु भंडारी (‘आपका बंटी’), कृष्णा सोबती (‘सूरजमुखी अंधेरे के’, मित्रो मरजानी’), ममता कालिया (‘बेघर’), प्रभा खेतान (‘छिन्नमस्ता’, ‘पीली आँधी’), राजीसेठ (‘तत्सम’), मेहरुन्निसा परवेज (‘अकेला पलाश’), अलका सरावगी (‘कलिकथा वाया बायपास’), नासिरा शर्मा (‘ठीकरे की मंगनी’, ‘शाल्मली’) आदि लेखिकायें स्त्री विमर्श को सुविचारित रूप में कथा साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत कर रही है।नारीवादी सिद्धांतों का उद्देश्य लैंगिक असमानता की प्रकृति एवं कारणों को समझना तथा इसके फलस्वरूप पैदा होने वाले लैंगिक भेदभाव की राजनीति और शक्ति संतुलन के सिद्धांतो पर इसके असर की व्याख्या करना है। स्त्री विमर्श संबंधी राजनैतिक प्रचारों का जोर प्रजनन संबंधी अधिकार, घरेलू हिंसा, मातृत्व अवकाश, समान वेतन संबंधी अधिकार, यौन उत्पीड़न, भेदभाव एवं यौन हिंसा पर रहता है।स्त्रीवादी विमर्श संबंधी आदर्श का मूल कथ्य यही रहता है कि कानूनी अधिकारों का आधार लिंग न बने। आधुनिक स्त्रीवादी विमर्श की मुख्य आलोचना हमेशा से यही रही है कि इसके सिद्धांत एवं दर्शन मुख्य रूप से पश्चिमी मूल्यों एवं दर्शन पर आधारित रहे हैं।हालाकि जमीनी स्तर पर स्त्रीवादी विमर्श हर देश एवं भौगोलिक सीमाओं में अपने स्तर पर सक्रिय रहती हैं और हर क्षेत्र के स्त्रीवादी विमर्श की अपनी खास समस्याएँ होती हैं।[7]

नारीवाद राजनीतिक आंदोलन का एक सामाजिक सिद्धांत है जो स्त्रियों के अनुभवों से जनित है। हालांकि मूल रूप से यह सामाजिक संबंधों से अनुप्रेरित है लेकिन कई स्त्रीवादी विद्वान का मुख्य जोर लैंगिक असमानता और औरतों की अधिकार इत्यादि पर ज्यादा बल देते हैं।नारी-विमर्श (फेमिनिज्म/फेमिनिस्ट डिस्कोर्स) का प्रारंभ कब हुआ, इसके संबंध में विद्वानों में सुनिश्चित एकमतता नहीं है। कुछ लोगों के अनुसार इसका प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ, [8]जब पश्चिम में स्त्रियों के मताधिकार और पाश्चात्य संस्कृति में स्त्रियों के योगदान पर चर्चा होने लगी थी।लेकिन वास्तविकता यह है कि स्त्री-विमर्श बीसवीं शताब्दी की देन है। बीसवीं शताब्दी में भी कुछ लोग इसका प्रारंभ फ्रांसीसी लेखक सिमोन द बुआ की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स'(1949)' के प्रकाशन-वर्ष से मानते हैं और कुछ मैरी एलमन की पुस्तक 'थिंकिंग एबाउट वीमन'(1968) के प्रकाशन - वर्ष से। लेकिन अधिकांश विद्वान इस तरह के किसी वर्ष-विशेष को स्त्री-विमर्श का प्रस्थान बिंदु मानना उचित नहीं समझते, क्योंकि बीसवीं शताब्दी में ही इससे पहले भी स्त्री की अलग पहचान, उसके स्वतंत्र अस्तित्व और उसके अधिकारों की समस्याओं को उठाया जाने लगा था। उदाहरण के लिए, वर्जीनिया वुल्फ ने अपनी पुस्तक 'ए रूम ऑफ़ वंस ओन'(अपना निजी कक्ष:1929) में लिखा था: "ह्वाइटहाल के पास से गुजरते हुए किसी भी स्त्री को अपने स्त्रीत्व का बोध होते ही अपनी चेतना में अचानक उत्पन्न होने वाली दरार को ले कर आश्चर्य होता है कि मानव-सभ्यता की सहज उत्तराधिकारिणी होने पर वह इसके बाहर, इससे परकीय और इसकी आलोचक कैसे हो गयी है।[9]"वर्जीनिया वुल्फ की इस पुस्तक ने यूरोप और अमरीका के

स्त्री-विमर्श को ही नहीं, भारतीय स्त्री-विमर्श को भी प्रभावित किया है। हिंदी की घोषित नारीवादी लेखिका प्रभा खेतान (उपनिवेश में स्त्री,2003) भी इस पुस्तक से प्रभावित हई हैं और सिमोन दि बुआ की पुस्तक 'द सेकंड सेक्स' से भी। यूरोप और अमरीका में नारीवाद ने बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में खूब जोर पकड़ा और मोनीक विटिंग, काटे मिलेट, जूलिया क्रिस्टीवा, हेलेनन सिक्सस, एलीन मोअर्स, एलेन शोवाल्टर, एंजिला कार्टर, मैरी जैकोबर्स आदि अनेक नारीवादी लेखिकाओं की पुस्तकें प्रकाशित हुईं।[10]

हिंदी में नारी-विमर्श ने बीसवीं शताब्दी के लगभग अंत में ज़ोर पकड़ा है और अनेक लेखिकाएं उसमें शामिल हुई हैं। हिंदी में नारी-विमर्श की दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें इस प्रकार हैं: बाधाओं के बावजूद नयी औरत (उषा महाजन, 2001), स्त्री-सरोकार (आशाराना व्होरा, 2002), हम सभ्य औरतें (मनीषा, 2002), स्त्रीत्व-विमर्श : समाज और साहित्य (क्षमा शर्मा, 2002), स्वागत है बेटी (विभा देवसरे; 2002), स्त्री-घोष (कुमुद शर्मा, 2002), औरत के लिए औरत (नासिरा शर्मा, 2003), खुली खिड़कियां (मैत्रेयी पुष्पा, 2003), उपनिवेश में स्त्री (प्रभा खेतान,2003), हिंदी साहित्य का आधा इतिहास (सुमन राजे, 2003) इत्यादि। इनके अतिरिक्त हिंदी की अनेक लेखिकाएं नारीवादी होने का दावा कर रही हैं और नारीवादी साहित्य के सृजन में संलग्न हैं।[11]

विचार-विमर्श

चित्रा मुद्गल हिन्दी जगत की प्रख्यात लेखिका एवं कथाकार है। आपको नारी मन की संवेदनाओं और उसके मनोविज्ञान की प्रवक्ता के रूप में माना जाता है। इनके कथा साहित्य में विलक्षणता , खुलापन , अनौपचारिकता सर्वत्र परिलक्षित होता है। नारी होने के कारण इनकी रचनाओं में प्रमुख रूप से नारी जीवन एवं समस्याओं का चित्रण मिलता है। चित्रा मुद्गल ने विभिन्न विधाओं में लेखन किया है , विधा कोई भी हो हर विधा के माध्यम से वह ‘ नारी ’ की नयी छवि को पाठक के सामने प्रस्तुत करती है। इनकी रचनाओं में नारी स्वतन्त्र एवं अपनी अस्मिता की तलाश करती हुई नजर आती है। स्त्री के साध्य और दुर्बलताओं को चित्रित करते हुए इन लेखिकाओं ने वास्तविक धरातल के विविध रूप प्रस्तुत किये। अनास्था और असन्तोष से उत्पन्न प्रतिरोध के नए स्वर दोनो लेखिकाओं की रचनात्मक पहचान है।

स्त्री आधारित विषयों पर वर्षों से चिन्तन - मनन हो रहा है। फिर भी यह अपने - आप में एक नया विषय है। इसके विविध पहलुओं पर नव्य दृष्टिकोण से विमर्श की आवश्यकता है। अद्यतन साहित्य में स्त्री और स्त्रीवाद केन्द्र में है। अब तक अनेक आलोचकों ने स्त्री को केन्द्र में रखकर अपनी आलोचना की है , परन्तु उसका आधार स्त्री जीवन का कोई एक पक्ष ही रहा है।[12]

स्त्री और स्त्री जीवन ने वैदिक काल से आधुनिक और उत्तर - आधुनिक काल तक अनेक सोपानों का सफर किया है। समाज में स्त्री जीवन ने उतार - चढाव के सुखद - दुखद स्थितियों का स्वाद लिया है। स्त्री शब्द की व्युत्पति , स्वरूप एवं महत्ता की व्याख्या करते हुए पतंजलि ने लिखा है - “ शब्द , स्पर्श , रूप , रस और गन्ध इन सबका समुच्य स्त्री है। स्त्री शब्द , स्त्री स्पर्श , स्त्री रूप , स्त्री रस इस लीलामयी जगत में अपनी अनिवर्चनीय सुषमा और अनुपम आकर्षण शक्ति के लिए सुविदित है। [13]”

स्त्री के महत्त्व को वैदिक काल में सबने स्वीकार किया। वेद - पुराणों में सम्माननीय स्थान प्राप्त कर स्त्री , पुरूषों के सदृश्य पूजनीय एवं अनुकरणीय थी। पंडित श्रीराम आचार्य ने पुराणों के संदर्भ में स्त्री के महत्त्व को उद्‌घाटित किया है - “ वेद पुराणों में नारियों के लिए ’ ग्ना ’ शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द प्राय : देव पत्नियों के लिए हुआ। ब्राह्मण ग्रंथ में यह शब्द मानवीन्ति के लिए प्रयुक्त हुआ , जिसकी यास्क ने व्याख्या की है - ’ ग्ना गच्छन्ति एना ;’ पुरूष ही उसके पास जाते हैं , सम्मान पूर्वक बातें करते हैं , उसे पुरूष अनुनय की आवश्यकता नहीं पडती। ”

स्त्री वैदिक काल से ही समाज में सम्मानित जीवन व्यतीत करती थी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे महत्त्व दिया जाता था। अथर्ववेद के अनुसार - “ विद्या का आदर्श सरस्वती में , धन का लक्ष्मी में , शक्ति दुर्गा में , इतना ही नहीं सर्वव्यापी ईश्वर को भी जगत जननी के नाम से सुशोभित किया गया है। ” वेद - पुराण एवं धार्मिक ग्रंथों में स्त्री को उच्च स्थान दिये जाने के उपरान्त भी मध्य काल में स्त्री के जीवन में मूलभूत परिवर्तन आया। स्त्री शोभा एवं भोग - विलास की वस्तु बनकर रह गयी। अन्यान्य तरीके से उसका शोषण किया जाने लगा। स्त्री नरकीय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हो गयी। भला हो राजाराम मोहन राय जैसे समाज सुधारकों का जिन्होंने नारी उत्थान का संकल्प लिया और कर दिखाया। पश्चिमी देशों में स्त्री सुधार और स्त्री - उत्थान के महत्त्वपूर्ण कार्य हुए। परन्तु भारतीय संदर्भ में स्त्री के संबंध में चुनौतियां अलग तरह की है। अपने अधिकार एवं हक के लिए संघर्ष भी करना है , तो अपनी सभ्यता - संस्कृति , पारिवारिक एवं सामाजिक यहां तक कि व्यक्तिगत मूल्यों को जीवंत रखने की परम्परा का निर्वहन करते हुए। स्वतत्रं ता पूर्व संघर्षरत भारतीय जनमानस

में स्त्री का यह रूप देखा जा सकता है। जहां वह स्वतत्रं ता के संघर्ष को स्वर दे रही है, परन्तु एक मर्यादा में। घर के अन्दर रहकर अपनी लेखनी से इस आवाज को बुलंद किया।[14]

स्वतंत्रता के बाद स्त्री अपने अधिकारों के प्रति अधिक सचेत एवं जागरूक हुई है। परिवार, समाज, राजनीति, आर्थिक एवं धार्मिक सभी क्षेत्रों में उसकी क्रियाशीलता बढ़ी है। वह अपने कत्त्रव्यों के प्रति सजग है, परन्तु शोषित होकर नहीं, बल्कि जागरूक होकर। जिस पितृसत्तात्मक सत्ता द्वारा वह नियंत्रित होती रही हैं, उसके प्रति वह अधिक सतर्क हुई है। राजनीति ऐसा क्षेत्र है, जिसके द्वारा सबको अपने लिए संघर्ष करने का एक मार्ग मिल जाता है, स्त्री-वर्ग इस रहस्य को भलि-भांति जान गया है। यही कारण है कि आजादी के बाद ही इस दिशा मे स्त्री की क्रियाशीलता अधिक बढ़ गयी। पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी इसके सशक्त उदाहरण थीं। जो भारत ही नहीं, अपितु विश्व की नेत्री बनने में सक्षम थीं। आज के संदर्भ में सोनिया गांधी, सुषमा स्वराज, शीला दीक्षित, ममता बनर्जी, प्रतिभा पाल्टि बृंदा कारात आदि का नाम लिया जा सकता है। मायावती भारतीय राजनीति में एक ऐसा नाम है, जो दलित एवं गरीब परिवार से हो कर भी भारतीय राजनीति को प्रभावित किया है। समकालीन समय उत्तर आधुनिकता का है। इसमें स्त्रीवाद के स्वरूप को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिल रहा है। यहां स्त्री नये-नये रूपों में प्रकट हो रही है। यदि कहा जाय कि उत्तर-आधुनिकता में स्त्री का एक नवीन अवतार हुआ है तो गलत न होगा। उत्तर-आधुनिकता में स्त्रीवाद एक जीवन-दर्शन के रूप में आया है और अपना-प्रचार कर रहा है। पाश्चात्य के साथ-साथ भारतीय साहित्य में इसे-प्रफुल्लित होने का पर्याप्त अवसर मिला है। हिन्दी साहित्य भी इसके प्रभाव से वंचित नहीं है।[15] उत्तर-अधुनिकता में 'स्त्रीवाद' का स्वरूप क्या है? इस पर ओम प्रकाश शर्मा लिखते हैं-

"उत्तर-आधुनिकता की एक प्रवृत्ति 'स्त्रीवाद' है। दारिदा ने पाठ में अनुपस्थिति की तलाश की बात कही है। परम्परागत साहित्य में स्त्री का स्वर दबा तथा मर्द लेखन की स्थापना मिलती है। इस लिए स्त्रीवाद एक नये पाठ की वकालत करता है। पाश्चात्य स्त्रीवाद का हिन्दी साहित्य पर जाने-अनजाने प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार उत्तर-आधुनिक चिंतन में स्त्रीवादी विचारधारा को नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। पश्चिमी स्त्रीवाद समझने की चीज है, ग्रहण करने की चीज नहीं।"

साहित्य में उत्तर-आधुनिकतावादी आलोचना के साथ ही विखण्डनवादी आलोचना भी आगे बढ़ी है। इसमें 'स्त्रीवाद' को केन्द्र में रखकर स्त्री शोषण, स्त्री मुक्ति, स्त्री अधिकार, स्त्री-पुरूष के आपसी भेद, आदि बिन्दुओं को उद्‌घाटित किया जा रहा है। अपनी सैद्धान्तिक मान्याताओं के अनुरूप विखण्डनवाद 'पाठ' को केन्द्र में रखता है। 'स्त्रीवाद' में वह स्त्री शरीर को केन्द्र में रखकर इस विषय पर अपनी मान्यताओं एवं धारणाओं को उद्‌घाटित करता है। इस संदर्भ में सत्यदेव मिश्र का मानना है कि-

"किसी भी पाठ को औरत की तरह पढ़ना, स्त्रीवाद समीक्षा का केन्द्र बिन्दू है। विखण्डन वाद औरतों के लिए लिंग भेदी दमन को सामने लाता है। अब तक समीक्षा मर्दवादी था। समीक्षा में अब तक पुरूषों की स्थापना का प्रयास रहा था अब स्त्री की स्थापना का प्रयास होने लगा है।[16]"

निश्चित रूप से स्त्री और स्त्रीवादी चेतना पर आरंभ से लेकर अब तक। वैदिक काल से लेकर उत्तर-आधुनिक काल तक। पाश्चात्य से लेकर प्राच्य तक। सभी बिन्दुओं पर गहना से अध्ययन किया जाय, विवेचन-विश्लेषण किया जाय तो अन्ततः निष्कर्ष निकलता है कि स्त्रीवादी चेतना अपने आप में एक नया विषय है। यदि स्त्री की पूर्व एवं वर्तमान स्थिति, उत्थान-पतन आदि विषयों को केन्द्र में रखकर विचार-विमर्श किया जाए तो निश्चित रूप से स्त्रीवादी चेतना अपने आप में एक नव्य विमर्श है।

स्त्रीवादी चेतना शब्द स्त्री, वाद और चेतना के मिलने से हुआ है। जिसका व्युत्पत्यार्थ इस प्रकार है-

स्त्री : व्युत्पति एवं अर्थ

स्त्री शब्द नारी का पर्यायवाची रूप है- नृ + अञ - डीन = स्त्री (1) नर का स्त्री रूप (2) विशेषत: वह स्त्री जिसमें लज्जा, सेवा, श्रद्धा आदि गुणों की प्रधानता हो (3) युवती तथा वयस्क स्त्रियों की सामूहिक संज्ञा (4) धार्मिक क्षेत्र में तथा साधकों की परिभाषा में (क) प्रकृति (ख) माया (5) तीन गुरु वर्णों की एक संख्या। अबला, वधु, प्रतीपदर्शिनी, वामा, वनिता, महिला। स्त्री से भाव नारी के उस विविध रूप से है, जो लज्जा, श्रद्धा, सेवा आदि गुणों से युक्त होती है।

वाद :

व्युत्पति एवं अर्थ वाद-(पु०) वद् + घञ = बातचीत, वाणी शब्द वचन, कथन, वर्णन निरूपण, वाद विवाद शाक्तार्थ खण्डन मण्डन। तर्क-वितर्क, बहस, तत्वाज्ञों द्वारा निश्चित तत्व या सिद्धान्त, मुकदमा कुछ

कहना या बोलना, दलिल, अफवाह किंमवदन्ति। वाद से तात्पर्य उस वाद विवाद से है जिसके द्वारा किसी भी बिन्दु के पक्ष - विपक्ष दोनों पहलुओं का विश्लेषण कर निष्कर्ष पर पहुँचा जाए।[17]

चेतना : व्युत्पति एवं अर्थ

चेतना शब्द चेत + ना (प्रत्य .) से बना है। जिसका समान्य अर्थ - बुद्धि, मनोवृति, ज्ञानात्मक मनोवृति, स्मृति, सुधि, याद, चेतनता, चैतन्य, संज्ञा होश। अन्तभविना, विवेक जागृति। ध्यान देना समझना। उपदेश देना, चेतावनी देना, सावधान करना। चेतना से भाव मनुष्य की उस मनोवृति से है, जिसके द्वारा वह सही गलत का निर्णय लेता है। अपने अधिकारों एवं कत्र्तव्यों के प्रति सजगता के साथ क्रियाशील रहता है।

चेतना की परिभाषा

चेतना ऐसी स्थिति है जिसको अलग - अलग रूपों में व्याख्यायित एवं परिभाषित किया गया हैं। अन्यान्य कोशों में इसकी लाक्षणिकता को परिभाषित किया गया है - इन परिभाषाओं को निम्नलिखित कोटियों में बांटा जा सकता है -

भाव परक परिभाषा - चेतना मनुष्य की भावात्मक स्थिति है। मानक हिन्दी कोश के अनुसार " चेतना मन की वह वृति या शक्ति है, जिससे जीव या प्राणी को आंतरिक घटनाओं (अनुभूतियों, भावों, विचारों आदि) और तत्वों एवं बातों का अनुभव या मान होता है। "

वैशिष्ट्यपरक परिभाषा

चेतना वह तत्व है जो सजीव एवं निर्जीव के बीच के अंतर को व्यक्त करता है।

विश्व हिन्दी कोश के अनुसार " चेतना जीवधारियों में रहने वाला वह तत्व है जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। दूसरे शब्दों में हम उसे मनुष्यों की जीवन - क्रियाओं को चलाने वाला तत्व कह सकते हैं। चेतना स्वयं को और अपने आस - पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों को मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है। "[18]

मूल्यांकन परक परिभाषा - चेतना द्वारा मनुष्य अपने कार्यों का मूल्यांकन करता है। मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार

" चेतना वह आंतरिक चेतना है जिसके द्वारा कर्ता को कर्म के उचित या अनुचित शुभ या अशुभ होने का बोध होता है या जो उसे शुभ करने के लिए उन्नत करती है। "

स्मरण परक परिभाषा

चेतना पूर्व स्थितियों को स्मरण करने की शक्ति है। इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ अमरिकन के अनुसार " हमारे मन में बहुत कुछ ऐसा चल रहा होता है, जिसके बारे में हमें स्वयं को कोई जानकारी ही नहीं होती। एक व्यक्ति अपने विभिन्न - विभिन्न अनुभवों को याद कर सकता है, यह चेतना है। "

मनोविज्ञानपरक परिभाषा

चेतना का अपना मनोवैज्ञानिक महत्व है इसके अन्तर्गत व्यक्ति के मन : स्थिति का अध्ययन किया जाता है। अंग्रेजी दार्शनिक जॉन लॉक की मनोवैज्ञानिक रूप से परिभाषा इस प्रकार है " चेतना से अभिप्राय है कि वो सब कुछ जो कुछ एक व्यक्ति के मन में होता है। '[15]

आंदोलन के रूप में इसकी शुरुआत ब्रिटेन और अमेरिका में हुई। 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के दौरान कई किस्म के संघर्ष हुए। उनमें एक संघर्ष स्त्री-पक्ष ने भी किया। उन्होंने धर्मशास्त्र और कानूनों के द्वारा खुद को पुरुषों के मुकाबले शारीरिक और बौद्धिक धरातल पर कमजोर मानने से इनकार कर दिया।1792 ई. में फ्रांसीसी क्रांति के महिला मुक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर[४] 1857 ई. में संयुक्त राज्य अमेरिका में महिलाओं और पुरुषों के समान वेतन को लेकर हड़ताल हुई थी। इसी दिन को बाद में अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया गया। इसी के साथ विश्व भर में नारी मुक्ति आंदोलन की शुरुआत हो चुकी थी।

1848 ई. में कुछ प्रखर महिलाओं ने बाकायदा एक सम्मेलन करके नारी मुक्ति से संबंधित एक वैचारिक घोषणा पत्र जारी किया। इन महिलाओं में ऐलिजाबेथ कैन्डी, स्टैण्टन, लुक्रसिया काफिनमोर प्रमुख हैं। इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि स्त्री को सम्पूर्ण और बराबर के कानूनी हक दिए जाए। उन्हें पढ़ने के मौके, बराबर मजदूरी और वोट देने का अधिकार इत्यादि क्रान्तिकारी माँगे पारित की गयी। यह आंदोलन तेजी से सारे यूरोप में फैल गया, लेकिन असली सफलता 1920 में जाकर मिली। जब अमेरिका में स्त्रियों को वोट डालने का अधिकार मिला।[13]

1859 ई. में पीटर्सबर्ग में अगला आंदोलन हुआ। 1908 में 'वीमेन्स फ्रीडम लीग' की स्थापना ब्रिटेन में हुई। जापान में इस आंदोलन की शुरुआत 1911 में हुई, 1936 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित मैडम क्यूरी सहित तीन महिलाएँ फ्रांस में पहली बार मंत्री बनीं।इस प्रकार विश्व के अनेक देशों में इस आंदोलन की शुरुआत हो चुकी थी, लेकिन 1951 में संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने जब भारी बहुमत से महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों का नियम पारित किया, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी मुक्ति के

आन्दोलन का प्रारम्भ तभी से माना जाता है।

1975, पूरे विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाया गया, जिसके परिणामस्वरूप कोपहेगन में पहला अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन, नैरोबी में दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन 1985 में और शंघाई में तीसरा 1995 में सम्पन्न हुआ।[11]

परिणाम

डॉ. अर्चना (2013) मिश्राः चित्रा साहित्य की सभी विधाओं में स्त्री साहित्यकारों का योगदान निरन्तर बढ़ रहा है। कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में तो कुछ ऐसी स्त्री रचनाकार आई हैं, जिनके साहित्य पर निरन्तर चर्चा-परिचर्चा एवं संगोष्ठियों का आयोजन हो रहा है, परन्तु आलोचना के क्षेत्र में इनका योगदान अभी कम है। इस संदर्भ में ओम प्रकाश शर्मा लिखते हैं- “भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक नारी होने के नाते साहित्यकारों ने स्त्री जीवन के अतं र्बाहाय जीवनानुभवों को प्रस्तुत किया। वहीं नारी मन की अटल गहराईयों में उतर कर उसका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अंकन भी किया है। नारीत्व की पुरुष मर्यादित सीमाओं की कहानी, उपन्यास, कविता आदि के माध्यम से अतिक्रमण कर नये धरातल की नींव रखी है। अपने स्त्रीत्व के प्रति जागरूक रचनाकार को निश्चय ही यह उसके आत्म सम्मान के खिलाफ लगता होगा। अतः उम्मीद की जानी चाहिए कि आलोचना के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ेगी। ”[12]

आज स्त्री विमर्श पर अनेक सवाल उठाए जा रहे हैं।

स्नेह मोहनीषः (2015) मानव का सबसे बड़ा आकर्षण केन्द्र मानव ही हैं और कारण यह है कि उसकी सभी अभिव्यक्तियाँ और कार्य मानव से संबंधित हैं। समूचा साहित्य मानवीयभावों, अनुभवो और संचारीभावों अर्थात भावों, मनोभावों और मनोविकारों से प्रभावित होता हैं। साहित्य के अध्ययन के साथ-साथ साहित्यकार का व्यक्तित्व भी उभरकर हमारे सामने आ जाता हैं। साहित्यकार अपनी प्रगति में इस प्रकार व्याप्त रहता है- जैसे षरीर में आत्मा और नभमंडल में वायु। यही कारण हैं कि उसके व्यक्तित्व के रूप-प्रतिरूप साहित्यकार द्वारा रचित साहित्य में यत्र-तत्र बिखरे रहते हैं। वस्तुतः कलाकार का व्यक्तित्व, उसका परिचय उसका विष्वास और उसकी प्रतिबद्धता सभी कुछ उसकी कला होती हैं।[13] साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके अन्तःभाव-विचारों की संप्रेषणीयता का प्रत्यक्ष आधार होता हैं और मुखर व्यक्तित्व स्वतः ही अन्तस के गहन गंभीर विचारधारा का नि दर्शन करा देता हैं। अतः व्यक्तित्व दर्शन से साहित्यकार के भाव-विचार, ज्ञान-विज्ञान और उसके वार्तालाप से उसके दार्शनिक ज्ञान का जीवनवृत उसके व्यक्तित्व निर्माण का एक बाह्य उपादान होता है और जीवन दर्शन अभ्यन्तर उपादान। वैसे तो किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का चित्रण करना लगभग असंभव ही हैं। फिर भी प्रतिभाषाली व्यक्ति के व्यक्तित्व का चित्रण करना तो असंभव ही हैं। फिर भी कार्य संपन्न करने के प्रयास तो किये जाते है और प्रयास करना ही जीवन धर्म हैं। प्रतिभा जन्मजात अथवा अर्जित हो सकती हैं परंतु आकर्षक और रोचक शब्दों के रूप में व्यक्त करने की क्षमता बिना अध्ययन, मनन, चिंतन और अध्यवसाय के साथ-साथ लगन के सुयोग के बिना संभव नहीं हो सकती हैं[14]

करुणाशंकर उपध्यायः (2015) इस दृष्टि से आलोच्य साहित्यकत्र्री चित्रा मुद्गल के जीवन के तथ्यपरक पहलुओं को उदघाटन करने का मेरा यह छोटा प्रयास हैं। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कथा लेखिका चित्रा मुद्गल ने अपनी रचना और रचनाधर्म व्यक्तित्व से भारत के साथ-साथ विष्व स्तर पर अपनी अलग पहचान बनाई हैं। जहाँ एक ओर इनके व्यक्त्वि में भारतीयता समाज, संस्कृति और कलात्मक अभिव्यक्ति का अदभूत संयोग हुआ हैं। वही दूसरी ओर अनके साहित्य में अभाव ग्रस्त जीवन व्यतीत करने वाले मजदूरों के प्रति सविषेष सहानुभूति हैं। नृत्य में अभिरूचि होने के कारण इनके व्यक्तित्व में अधिक विचार आया है। इनके साहित्य की महत्ता और उपयोगिता उनके साहित्य पर प्राप्त अनेकानेक मान-सम्मान और पुरस्कारों से लगाई जा सकती हैं। कुप्रथाओं, कुप्रवृत्तियों से ग्रस्त एवं भ्रष्ट समाज से संघर्ष करती हुई चित्रा मुद्गल ने अपने साहित्य में सदैव भारतीय संस्कृतिक और मान्यताओं को ही महत्व दिया हैं। इनके कथा साहित्य का सृजन उस यथार्थ भूमि पर हुआ हैं। जिस पर चलते हुए लेखिका को अनेक रूपों में संघर्ष करना पडा हैं। चित्रा मुद्गल यथार्थोन्मुखी लेखिका के साथ-साथ भारतीय संस्कृति की चिन्तक भी हैं। इसकी झलक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों में झलकती हैं। वे अत्यंत संवेदनषील लेखिका हैं।[15]

। चित्रा मुद्गलः (2014) पुरुष समर्थकों को इस बात की चिन्ता है कि कहीं स्त्री विमर्श के बहाने हमारा अधिकार तो नहीं छीना जाएगा, उनकी यह चिन्ता निरर्थक है, क्यों कि स्त्री विमर्श के बहाने स्त्री अपने स्वत्व को पाना चाहती है। उसे किसी की हार जीत से कोई मतलब नहीं है। वह तो

बस समाज में सम्मान्ति जीवन जीना चाहती है। इस संदर्भ में राकेश कुमार - प्रसिद्ध लेखिका महादेवी वर्मा की उक्तियों का उल्लेख करते हैं - " हमें न किसी पर जय चाहिए न किसी से पराजय , न किसी पर प्रभुत्व चाहिए , न किसी पर प्रभुता , केवल अपना वह स्थान , वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है। परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी। " अद्यतन परिवेश में स्त्री चिन्तन और लेखन में अत्यधिक परिवर्तन आया है। स्त्री लेखिकाएँ पुरानी परम्पराओं से निकल कर आधुनिक यथार्थ को अपने साहित्य का विषय बना रही हैं। अनामिका का कहना है - " पहले जब स्त्रियाँ कलम उठाती भी थीं , उनमें वह होता था जिसे मनोवैज्ञानिक ' पुअर लिजा काप्लेक्स ' कहते हैं - बेचारी दुःख की मारी वाला भाव। आधुनिक स्त्री लेखन आत्म - विश्लेषणपरक है , और उसके ' मैं ' भाव का विस्तार इतना बढ़ गया है कि ' सारी दुनिया ' समा गई है , खुद से अकेले में रुबरु हो कर पूछती तो है - प्रेम गली की तरह मेरी अस्मिता कहीं इतनी ' सांकरी ' तो नहीं हुई जाती ' जामै में दुई न समाहि " । [16]

भारत में नारीवादी आंदोलन की शरुआत नवजागरण के साथ हुई।राजा राममोहनराय ने 1818 में सती प्रथा का विरोध किया और उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप 1829 में लार्ड विलियम बैण्टिक ने सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित किया। बाल-विवाह, विधवा-विवाह और बहुपत्नी प्रथा के विरुद्ध लड़ते हुए राजा राममोहनराय स्त्री के पक्षधर नजर आते हैं। स्वामी विवेकानन्द और स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। इस प्रकार अमेरिका से शुरू हुआ यह आन्दोलन भारत में स्त्री जाति की चेतना का स्वर बन गया।स्त्रियों की स्वतंत्रता व समानता के लिए कई महिला सुधारकों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की जिनमें रमाबाई, ताराबाई शिंदे, सावित्री बाई फुले आदि महत्वपूर्ण हैं।पं. रमाबाई ने 1882 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्त्री धर्म नीति' के माध्यम से स्त्रियों को जागृत कर उन्हें स्वावलम्बन और स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाया। उन्होंने स्त्री शिक्षा को लेकर कड़ा परिश्रम किया। वे स्त्रियों के लिए समान अवसर व समान वेतन प्रदान करने के पक्ष में लगातार लड़ती रहीं। सन् 1883 में उन्होंने पितृसत्ता के विरोध में 'द हाइ कास्ट हिन्दु विमेन' पुस्तक लिखी। विधवाओं और परित्यक्ताओं के लिए उन्होंने 'शारदा सदन' की स्थापना की। वे स्त्री-पुरुष के परस्पर सहयोग व समानता के भाव पर बल देती हुई कहती है कि- "यह विस्तृत सांसारिक जिन्दगी किसी महाकाव्य की तरह है, जिसके दो पहलू हैं, वाम और दक्षिण। वाम पहलू नारी और दक्षिण पहलू पुरूष। जब दोनों पहलू संतुलन में कार्य करते हैं तभी प्रसन्नता और सुख का अनुभव हो सकता है।"[17]

ज्योतिराव फुले व उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले ने स्त्रियों के सुधार के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। सावित्री बाई फुले ने भी स्त्रियों के सुधार के लिए 'महिला सेवा मंडल' की स्थापना की। फुले दम्पत्ति ने सन् 1848 से लेकर सन् 1952 तक लगभग अठारह पाठशालाएं खोलीं। उन पाठशालाओं का संचालन और प्रबंध सावित्री बाई ही किया करती थीं। उन्होंने स्वयं ही पाठशालाओं का पाठ्यक्रम बनाया और उसे कार्यान्वित भी किया। प्रारंभ में लड़कियों की शिक्षा का विरोध तो हुआ किंतु बाद में लोग स्त्री-शिक्षा के महत्व को समझने लगे और कन्याशालाएँ अधिक संख्या में खुलती चली गई।आगे चलकर सन् 1855 में ज्योतिराव फुले ने पुणे में रात्रि पाठशाला खोली। इस पाठशाला में दिनभर काम करने वाले मजदूर, किसान और गृहिणियाँ पढ़ने आती थीं। यह भारत की पहली रात्रि पाठशाला थी। ज्योतिराव फुले का मानना था कि- "जब तक महिलाएँ शिक्षित नहीं हो जाती, तब तक सच्चे अर्थों में समाज शिक्षित नहीं हो सकता। एक शिक्षित माता जो सुसंस्कार दे सकती है, उन्हें हजार अध्यापक या गुरु नहीं दे सकते। जब तक देश की आधी जनसंख्या (नारी समाज) शिक्षित नहीं हो जाती, तब तक देश कैसे प्रगति कर सकता है?" वे मानते थे कि स्त्री और पुरुष जन्म से ही स्वतंत्र हैं, इसलिए दोनों को सभी अधिकार समान रूप से भोगने को अवसर मिलना चाहिए।उन्होंने तत्कालीन समाज में विधवाओं की दयनीय दशा को देखकर उनके केशमुण्डन का विरोध किया, विधवाओं के पुनर्विवाह का समर्थन कर उनकी स्थिति में सुधार के कड़े प्रयत्न किये।ताराबाई शिंदे ने सन् 1882 में अपनी रचना 'स्त्री-पुरुष तुलना' के माध्यम से तत्कालीन समाज में स्त्री की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया। लिंग के आधार पर स्त्री-पुरुष के अधिकारों को लेकर जो भेदभाव हो रहा था उसका उन्होंने कड़ा विरोध किया। विधवाओं पर किये जाने वाले अत्याचारों का उन्होंने डटकर मुकाबला किया तथा उनके पुनर्विवाह के लिए आवाज उठाई। ताराबाई शिंदे स्वयं विधवा थीं इसलिए विधवाओं की पीड़ा से, उन पर हो रहे अत्याचारों से अधिक परिचित थी। ऐसे धर्म और धार्मिक कट्टरताओं पर कड़ा प्रहार करती थी जो एक विधवा को ऐसा नरकीय के जीवन जीने पर विवश करते हैं।इन स्त्रियों ने न केवल नारी आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपितु पुरुष वर्चस्व की लक्ष्मणरेखा लांघकर काफी तादाद में देश की आजादी की लड़ाई में भाग लिया 20वीं सदी तक आते-आते एनीबेसेंट, सरला देवी, सरोजिनी नायडू, और इंदिरा गांधी जैसी महिलाएं राजनीति में सक्रिय हुईं तथा वहां अपने दखल से उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी।[18]

निष्कर्ष

कल्पना पाटीलः (2016) मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण परिस्थितियों के अनुरूप होता हैं। किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्व का अध्ययन करना आवश्यक होता हैं। क्योंकि व्यक्तित्व के अनुरूप ही वह

साहित्य का निर्माण करता हैं। क्योंकि साहित्य सृजन के लिए प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों को आवश्यक माना जाता हैं।

श्रीनिवास श्रीकान्तः यथार्थ किसी साहित्यकार के साहित्य का मूल्यांकन, व्याख्या के लिए उसके जीवन से परिचित होना अत्यंत आवश्यक हैं। क्योंकि वह अपने जीवन के किसी पक्ष को साहित्य में उदघाटित करता हैं। व्यक्तित्व से तात्पर्य है जन्म, शिक्षा, परिवार उनके स्वभाव आदि से होता हैं। चित्राजी के व्यक्तित्व को उजागर करते हुए फिल्म जगत के लेखक एवं पत्रकार शब्दकुमार ने कहा था कि - “चित्रा को जानना सहज हैं क्योंकि उनकी सोच और आचरण में ऐक्य हैं। घर के सदस्यों की नाराजगी के बावजूद झाडु लगानेवाली जमादारनी को उसी गिलास से पानी पिलाती है, जिससे स्वयं पानी पीती हैं।” चित्राजी के व्यक्तित्व को हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं।[15]

कथा साहित्य में स्त्री चेतना के विकास के साथ-साथ उसके स्वरूप और प्रयास में परिवर्तन आया है। जहाँ कथा के स्वरूप में स्त्री चेतना का विकास कर समाजसुधारकों ने चेतना के विकास में तमाम प्रयास किये वहीं स्त्री ने भी लेखन से लेकर अपनी अस्मिता तक की रक्षा की। पुरूषों के साथ समानता का दृष्टिकोण बनाते हुए खुद को ‘व्यक्ति’ के रूप में स्थापित किया। वह कोई भी सीमा हो खुद को आगे बढ़ाने में सक्षम और विपरीत परिस्थितियों से लड़ने का हौसला रखते हुए लेखन से लेकर चेतना के नये आयाम का निर्माण किया है।हिंदी प्रसिद्ध लेखिका प्रभा खेतान का साहित्य स्त्री जीवन के संघष, उसकी इच्छा, मनोकामना, पीड़ा, छटपटाकर एवं स्त्री मानसिकता का जीवंत दस्तावेज है। पुरुष प्रधान संस्कृति रूढ़ि-परम्परा को तोड़कर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने वाली आधुनिक नारी का अंकन उन्होंने बड़े ही सशक्त ढंग से किया है।प्रभा खेतान की नारी चेतना भावनाओं के सहारे जीवन जीने की अपेक्षा व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाये हए हैं। उनका स्त्री विमर्श केवल पुरुष विरोधी न होकर नारी को मानसिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनातक स्तर पर समानाधिकार की मांग करने वाला है। यह बात उनकी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में भी स्पष्ट नजर आती हैं।प्रभा खेतान स्वतन्त्र, धनाढ्य महिला-व्यवसायी है और लेखिका हैं वह एक विवाहित पुरुष की 'रखैल' की भूमिका स्वेच्छा से सवीकार करती हैं। उनका सारा द्वन्द्व इस तथ्य को लेकर है जिसे वे एक अनुपस्थिति प्रतिबिम्ब कहती है। वे स्वयं से सवाल करती हैं- "मैं क्या लगती थी डॉक्टर साहब की?[16]....इस रिश्ते को ना नहीं दे पाऊंगी। भला प्रेमिका की भूमिका भी कोई भूमिका हुई.... रखैल का क्या अर्थ, हुआ? वही जिसे रखा जाता है, जिसका भरण-पोषण पुरुष करता हो। लेकिन डॉक्टर साहब वह मेरा भरण-पोषण नहीं करते।" उनकी यह आत्मकथा देहमुक्ति की कथा है। अपना विकल्प स्वयं चुनने पर भी घुटन और टूटन वहां भी है।[18]

संदर्भ

1. डॉ. अर्चना मिश्राःचित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में चिंतन, पृ - 18
2. चित्रा मुद्गलः ‘मेरे साक्षात्कार’, पृ - 177
3. चित्रामुद्गलः ‘जिनावर’ भूमिका पृ ‘7
4. चित्रा मुद्गलः ‘लक्कड़बघ्घा’, पृ - 7’
5. चित्रा मुद्गलः ‘जगदंबा बाबू गाँव आ रहे है’, पृ - 4
6. चित्रा मुद्गलः ‘लक्कड़बघ्घा’, पृ - 10
7. चित्रा मुद्गलः ‘जगदंबा बाबू गाँव आ रहे है’, पृ - 8
8. स्नेह मोहनीषः जूही के फूलों सी हँसी वाली सोनपरी लोकायतः 31 जुलाई 2007, पृ. 38
9. करुणाशंकर उपध्यायः ‘आवां’ विमर्श, पृ - 268
10. कल्पना पाटीलः चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य , पृ - 20
11. चित्रा मुद्गल के साथ गोरखनाथ तिवारी की भेटवार्ता, संकल्प संपादक , पृ - 89
12. उर्मिला शिरीश : में साक्षात्कार, पृ – 139
13. डाॅ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स,१९७३, पृ.४३२
14. ↑ डाॅ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स,१९७३, पृ.४३२
15. ↑ डाॅ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स,१९७३, पृ.४३२-४३३
16. ↑ डॉ. हेमंत कुकरेती- हिंदी साहित्य का इतिहास, सतीश बुक डिपो,२०१६, पृ.२३७
17. ↑ डॉ. मंदाकिनी मीणा एवं डॉ. अनिरुद्ध कुमार 'सुधांशु'- अस्मितामूलक विमर्श और हिंदी साहित्य, श्री नटराज प्रकाशन, २०१६, पृ.३१
18. ↑ डॉ. मंदाकिनी मीणा एवं डॉ. अनिरुद्ध कुमार 'सुधांशु'- अस्मितामूलक विमर्श और हिंदी साहित्य, श्री नटराज प्रकाशन, २०१६, पृ.३१

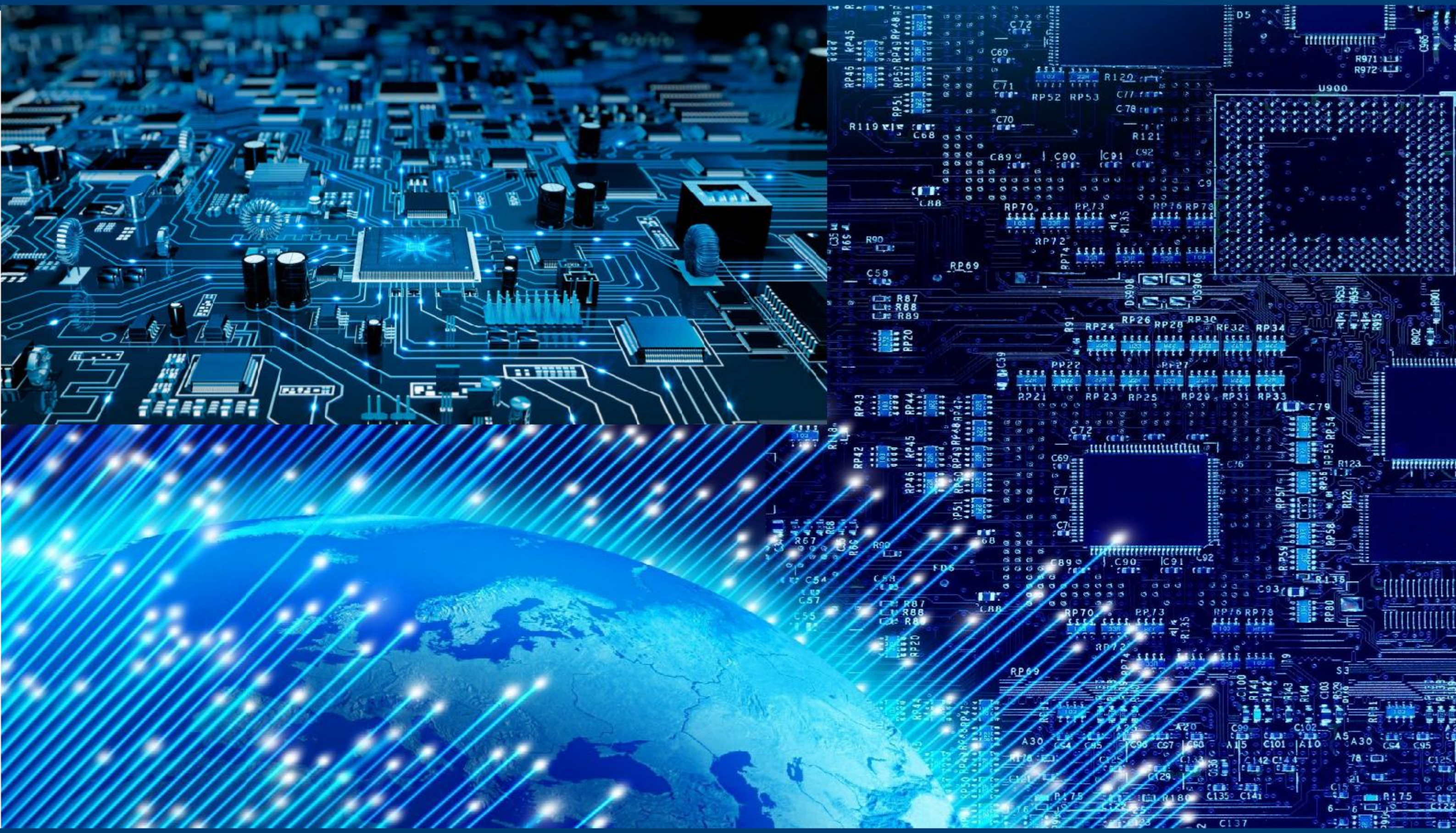

International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| Mobile No: +91-9940572462 | Whatsapp: +91-9940572462 | ijarasem@gmail.com |

www.ijarasem.com